International Journal of Applied Research 2015; 1(2): 223-224

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(2): 223-224
www.allresearchjournal.com
Received: 14-11-2014
Accepted: 19-12-2014

डॉ. युगलकिशोर शर्मा
प्राध्यापक, चित्रकला विभाग, से.म. बि.रा. महाविद्यालय, नाथद्वारा, पता– 29, समर्पित कोम्पलेक्स, पुला, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. युगलकिशोर शर्मा
प्राध्यापक, चित्रकला विभाग, से.म. बि.रा. महाविद्यालय, नाथद्वारा, पता– 29, समर्पित कोम्पलेक्स, पुला, उदयपुर, राजस्थान, भारत

श्रीविग्रह का आकारद–विवेचन

डॉ. युगलकिशोर शर्मा

सारांश–
श्रीविग्रह की आकारद–विवेचन दृश्यगत–बोध एवं गत्यात्मक–निर्देशन से स्पष्ट किया गया है। आज की दृश्य–कलाओं के संदर्भ में यह बात सर्वमान्य है कि दृश्यगत कलाओं का अपना ही दृश्यगत रचना प्रारूप होता है जिससे सीधे सम्पर्क कर दर्शन का मन आलोडित होता है। यह रचना प्रारूप एक चुपचाप–सा पडा रचना–पिण्ड न होकर आकारद तत्वों, गतियों, लयों व तानों का एक गतिक रूप होता है जिसे मनोवैज्ञानिकी विश्लेषण में गतिक निर्देशन कहा गया है, विशेषकर रूडोल्फ अर्नहाइम ने। इसी परिवेश में श्रीविग्रह की आकारद विवेचना की गई है।

मुख्य शब्दः– श्रीविग्रह (श्रीनाथजी की प्रतिमा) आकारद तत्व (Formal elements), गतिक–निर्देशन (Dynamic Direction), वरिम विन्यास (Space Organization), आवृत्तिदर्शी (Stroboscopy), कार्टिसन–चौकडी (Cartison Grid) चीरा–चित्रण (Split Representation)

प्रस्तावना
भारतीय मूर्तिकला में कुषाण से लेकर गुप्तकाल की प्राचीन मूर्तियां अत्यन्त कलात्मक है, विशेषकर गोवर्धनधारी कृष्ण की प्रतिमाएं। गोवर्धनधारी कृष्ण की प्राप्त मूर्तियों में सर्वप्रथम चौथी–पांचवी शताब्दी की सारनाथ मे बनी चूना–पत्थर की 'कृष्ण–गोवर्धन– की मूर्ति जो वाराणसी में मिली। उसे प्रसिद्ध विद्वान हारले ने गुप्तकाल की पूर्वी–मध्य देश में मिली सर्वोत्कृष्ट हिन्दू मूर्ती माना है। यह मूर्ति 'श्रीविग्रह' के अत्यधिक सन्निकट है। अतः श्रीविग्रह का गत्यात्मक निर्देशन से विवेचन करना महत्वपूर्ण होगा।
प्रस्तुत शोध–पत्र में श्रीनाथजी स्वरूप (श्रीविग्रह) की आकारद–विवेचन दृश्यगत बोध एवं गत्यात्मक–निर्देशन से स्पष्ट करना है। गोवर्धनधारी–कृष्ण की सम्प्रतिकाल तक प्राप्य प्रतिभाओं में 'श्रीनाथजी' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। श्रीनाथजी पुष्टिमार्ग के प्रमुख श्रेव्य–विग्रह है जो भारत में राजस्थान के नाथद्वारा के मंदिर मे प्रतिष्ठित है। मंगला–दर्शन चित्रों में श्रीविग्रह के वास्तविक स्वरूप की वस्तुतः एवं काल्पनिक झलक मिलती है।
श्रीनाथजी का स्वरूप गोवर्धनधरण का है जिसमें श्रीनाथजी उर्ध्वभुजा से गोवर्धन पर्वत को उठाये हुए है और दांयी भुजा की मुठ्ठी कमर पर रखे हुए है। एक भुजा से दूसरी भुजा तक वनमाला धारण किये हुए है। पृष्ठ का लम्बुत्वाकारी गोलाकार कंदरा को दर्शाता है। कंदरा के निकट बनी पीढ़िका में गोवर्धन–पर्वत की शिलाएं है जिसके मध्य में स्थान–स्थान पर आकृतियां है। पीढ़िका में सबसे उपर मध्य में एक शुक (तोता) है। शुक के दांयी ओर एक मुनि है और बांयी ओर दो मुनि बैठे है। दोनो मुनि के नीचे एक सर्प है और सर्प के नीचे नृसिंह है। नृसिंग के नीचे मयूर है। दांयी ओर एक मुनि के नीचे मेष है। मेष के नीचे एक सर्प और सर्प के नीचे दो गायें है। सबसे नीचे यमुना है। श्रीविग्रह का रंग ललाई युक्त नीला गोवर्धन पर्वत की शिलाओं के अनुरूप है।
वल्लभ–संप्रदाय की भावनानुसार ब्रज के गोवर्धन पर्वत की एक कंदरा में श्रीनाथजी स्वरूप का प्राकट्य[1] श्रावण कृष्णा 3 वि.सं. 1466 (1409 ई.) में हुआ। 1499 ई. में वल्लभाचार्य (1478–1530 ई) ने वहां मंदिर बनवा कर श्रीनाथजी को प्रतिष्ठित किया। तदन्तर 1671 ई. में औरंगजेब की हिन्दू–विरोधी नीति के कारण गोस्वामीजी को श्रीनाथजी को वहां से लेकर निकलना पडा। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह (1652–1680 ई.) ने सिंहांड. (नाथद्वारा) में श्रीनाथजी को मंदिर में प्रतिष्ठित कर सुरक्षा प्रदान की।[2]
गोवर्धनधरण की प्राप्त प्रतिमाओं में सर्वप्रथम 4–5वीं शताब्दी की सारनाथ मे बनी चूना–पत्थर की 'कृष्ण–गोवर्धन' की प्रतिमा है जो अब भारत कला भवन वाराणसी में है। गोवर्धन धरण की दूसरी प्रभावशाली प्रतिभा मथुरा संग्रहालय में संग्रहित गोवर्धनधार–कृष्ण' की है जो चौथी शताब्दी में मथुरा में निर्मित चकत्तेदार लाल पत्थर की है। यह प्रतिमा 'श्रीविग्रह' के अधिक सन्निकट है, अतः श्रीविग्रह का रचनाकाल चौथी शताब्दी के लगभग (गुप्तकाल) है तथा समस्त अभिलेखो के आधार पर रचनास्थल भी मथुरा ही निर्धारित होता है।

श्रीविग्रह की आकारद परिकल्पनाओं के अन्तर्गत पृष्ठभाग के लम्बुत्वाकारी गोलाकार में श्रीनाथजी का स्वरूप स्थापित है जो अचल मुद्रा को दर्शाता है। यद्यपि कमर पर रखे दायें हाथ से प्रारंभ होती वनमाला की लय खींचती हुई उपर बांये हाथ की बांह तक जाकर मुद्रा को नृत्य–सी गत्यात्मकता देती है, परन्तु सम्पूर्ण का केन्द्र रेखा पर प्रस्थापना से इस घटना का स्तर क्षणिक घटना से परे हो जाता है और यह मुद्रा मानव कल्याण का चिर स्थाई प्रतीक बन जाती है। इस चिर–स्थाईत्व से दोनों ओर की चट्टानों के पूरक अत्यधिक व्यंजना मिलती है। कोणीय गति से त्रिकोण बनाती रेखाएं (Stoboscopy) स्टोबोस्कोपी[3] रूप सें गोवर्धन पर्वत के उपर उठते भाव को बनाती है।

श्रीविग्रह के खडे स्वरूप में भ्रह्म–सूत्र[4] के पूरक में पडी रेखाएं पटल को कार्टिजन चौकडी (Cartison grid) देकर शक्तिवत समतल वरिम विन्यास (Space organization) के आभास को प्रमुखता देता है। पड़ी रेखाओं से गोवर्धनघारी कृष्ण का आकार उसी आधार पर भूमि–सूत्र से शीर्ष रेखा तक के सूत्रों पर निर्मित होने के कारण सम्पूर्ण पटल वरिए विन्यास के तारतम्य पडी पट्टियों में निर्मित आंलों की गहराईयों का दृष्टि से उपर उठने के साथ कम होते जाना तथा उपर की ओर जाती हुई पट्टियों का कृष्ण के आकार से दबते हुए निर्मित करना आदि सभी कुछ पहाड़ की उत्तंग होती हुई चोटी के पृष्ठ तल के शक्तिवत गत्यात्मक निर्देशन (Dynamic Direction) को दृश्यगत अनुभव बना देता है। पीछे सरकते तल के अनुभव का पूरक स्वरूप आगे निकलता स्वरूप का आकार अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। यह अपने विशाल रूप के कारण भी गत्यात्मक रूप से परिलक्षित होता है और यह स्वरूप भारतीय शास्त्रीय वरिम विन्यास का सश्वासपूर्ण अथवा धड़कता रूप बाहर निकलता है जिससे चित्र में भारतीय परम्परा की सश्वास प्रतिति मुखरित होती है।[5] मुखारविन्द की सम्मुखता के संदर्भ में चीरा–चित्रण Split Representation सिद्धान्त पूर्णतया स्थापित है जो इसे लोक कला के अंगों पर निर्धारित करती है।

निष्कर्ष–

श्रीविग्रह दृष्यगत बोध एवं गत्यात्मक निर्देशन से किया गया आकारद–विवेचन गोवर्धनधरण–कृष्ण का अत्यन्त भावपूर्ण स्वरूप उभर कर आता है। पुष्टिमार्गीय भावना मे प्रभु का लोकप्रिय आकार विन्यास का ही लक्षण उभर कर आया है। यह बात विशिष्ट रूप से दृष्टव्य रही कि मूल रूप से भारतीय परम्परा का 'प्राण' व 'सश्वाश' बिन्दु वरिम विन्यास में मोटे रूप से सदैव प्रस्थापित रहा है।

संदर्भः

1. त्रिपाठी नारायणराधाकृष्ण शास्त्री, श्रीनाथजी की प्राकटयवार्ता, (नाथद्वाराः विद्यापीठ विभाग मंदिर मंडल), पृ. 44
2. श्यामलदास, वीर विनोद (द्वि.भाग) खण्ड–1, (दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास प्रका.) पृ. 452
3. Rudolf Arnhime. Art and Visual Perception (Los Angeles; University of California Press 1960, 305.
4. Kapila Vatsayan. The square and the circle of the Indian Arts (New Delhi: Roli Book international 1985, 103-142.
5. Sttela Kramrish. The Art of India, Tradition of Indian Sculptare, Painting and Architecture (London: The Phidon Press 1969, 246.